Chap-4

चतुर्थ अध्याय :

व्यक्ति के मानसिक तनाव से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ - हिन्दी-गुजराती कहानी के संदर्भ

चतुर्थ अध्याय :

व्यक्ति के मानसिक तनाव से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ – हिन्दी–गुजराती कहानी के संदर्भ

वैयक्तिक तनावजन्य विघटन स्थितियाँ और हिन्दी–गुजराती कहानियाँ

तनाव इस युग की धरा की एक प्रमुख समस्या है। कुंठा, संत्रास, तनाव - ये आधुनिक युग की देन हैं। लोगों को व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक परेशानियाँ और समस्याएँ पहले भी थीं - हर युग में रहती आई हैं, किन्तु उपर्युक्त कुछ शब्द इसी युग में विशेष रूप से हमारे कानों में टकराने लगे हैं। इसके बारे में एक विद्वान लेखक का कथन दृष्टव्य है - "व्यक्ति से व्यक्ति और व्यक्ति से समाज तक इस समस्या से ग्रस्त है कि तनाव और किसी समय नहीं था और कमोबेशी हर मनुष्य में रहा है, रहना चाहिए भी क्योंकि मनुष्य मृण्मय है और तनाव भृण्मयता की एक अभिव्यक्ति है। तनाव मृत्यु का एक कारण है जबकि आज लोग तनाव के कारणों की खोजबीन में लगे हुए हैं। अगर तनाव का कारण ही जानना है तो मृत्यु को ही तनाव का कारण समझ लेना चाहिए।

तनाव मनसा, वाचा, कर्मणा में समस्वरता का अभाव है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि मानसिक, प्राणविक और प्राकृतिक या दैहिक विकास में से किसी एक का भी एकांगी विकास होता है तो सन्तुलन बिगड जाता है और तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। इस लिए तनाव से निपटने के लिए जरुरी है यह कि

हम जानें कि मन, प्राण और काल की समस्वरता, समरसता या सन्तुलन किस प्रकार पाया और रखा जाये।"[1]

वर्तमान भारतीय समाज का व्यक्ति स्वयं को अव्यवस्थित अनुभव करने के लिए विवश है। परंतु यह भी द्रष्टव्य है कि आज के सामाजिक जीवन में आदमी जिस भय और संग्राम से भागता है, वह जीवन में जोखिम न उठाने की आदत का परिचायक है। व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व का निर्माण उसका परिवार ही करता है।

आज के भारतीय जीवन में एक घुटन है और उस घुटन के साथ एक संघर्ष है। यह संघर्ष व्यक्ति और परिवार के मध्य सामाजिक स्तर पर चलता है। इसलिए उसे एक व्यापक संघर्ष की संज्ञा दी जा सकती है। यह संघर्ष व्यक्ति और परिवेश के मध्य होने के कारण व्यक्ति संघर्षमय होता है, किन्तु इकाई का संघर्ष केवल उसी इकाई का नहीं होता। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जाए तो यह एक समाज और जीवन का संघर्ष होता है। व्यक्ति का यह परिस्थितिगत संघर्ष अपने व्यापक संदर्भ में अपनी पहचान पाता है। कहानी इन्हीं सन्दर्भो को व्यक्त करती है, क्योंकि उसके सामने एक जीवन होता है और परस्पर टकराहट से उस जीवन की बदलती हुई स्थितियाँ और सत्य कहानी मे व्यक्त होते हैं।

व्यक्ति और उसके परिवार के बीच यह सम्बन्ध सामाजिक भूमिकाओं के

आधार पर भी स्पष्ट है। "वस्तुतः यथार्थ तथा समाज-प्रत्याशाओं के स्पष्टीकरण एवं आदर्शो, लक्ष्यों और मूल्यों का निश्चय समाज-प्रारूपों के आधार पर होता है। इसके लिए समाज के संगठन मे विभिन्न लोगों तथा समूहों की विभिन्न भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं, जिन्हें भूमिका-आकलन कहते हैं।"[2] चार्ल्स हर्टन कूले ने प्राथमिक समूहों के अन्तर्गत परिवार, बच्चों के खेल के झुण्ड, पडौस तथा बुजुर्गों की मण्डली को रखा है, जिनमें आमने-सामने का साहचर्य तथा सहयोग होता है। ये समूह व्यक्ति को सामाजिक एकता का पूर्णतया तथा सर्वप्रथम अनुभव देते हैं। अतः ये समूह जीवन के स्त्रोत और समाज की सामूहिक प्रकृति के द्योतक हैं। ये सभी समाजों में एकरूप से होते हैं। ... इसके बात द्वितीयक समूह है जो व्यापक उत्पादन-सम्बन्धों से तथा सामाजिक एवं आर्थिक हितों के कारण हितों में बंधते हैं।"

"व्यक्ति या मनुष्य इन्हीं प्राथमिक और द्वितीयक समूहों का सदस्य होता है।"[2]

विघटन के अध्ययन का एक अन्य आनुभाविक उपागम व्यक्तिगत अध्ययन है। इन अध्ययनों के अन्तर्गत यह विचार निहित है कि विघटन की सबसे अच्छी व्याख्या, उससे ग्रसित व्यक्तित्व ही प्रस्तुत कर सकता है। अन्य शब्दों में विचलनकारी व्यक्ति ही, विघटन या विचलन उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों की सबसे अच्छी व्याख्या कर सकता है। इसी अंतर्गत 'थामस' तथा 'नैनकी' ने अपने अध्ययन "द पोलिश पीजेन्ट" में व्यक्तिगत अध्ययन विधि का उपयोग किया है। थामस ने

व्यक्तिपरक कारक का महत्व बताते हुए लिखा है कि - "यदि मनुष्य वास्तविक रूप में परिस्थिति को परिभाषित करता है तो उनके परिणाम भी वास्तविक होते हैं।"[3]

व्यक्ति के लिए समकालीन सिद्धांतविदों का इस संदर्भ मे मत है कि - "व्यक्तित्व के इस स्वरूप-निर्धारण में प्रारम्भिक बाल्यकाल के पारिवारिक अनुभवों की विशिष्ट भूमिका होती है। व्यक्तित्व गुणों में स्थायित्व के बिना, व्यक्तियों के मध्य सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होना लगभग असम्भव है। यह स्थायित्व व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के अनुभवों से ही अर्जित करता है।"[4]

व्यक्ति समाज का एक अंग है। जिस प्रकार परस्पर विरोधी विचार, दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों मे एक दूसरे के प्रति द्वेष, घृणा एवं तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। तब व्यक्ति के अन्दर असंतुलन, असंगतता एवं अशान्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है, तो जिसकी वजह से मानसिक कष्ट होता है और यही मानसिक कष्ट तनाव का रूप लेता है। यह तनाव जो मानव आक्रोश, चिन्ता, इच्छा, माँग एवं आवश्यकातओं के पीछे निहित है। अतः तनाव व्यक्ति को उन लक्ष्यों की ओर प्रेरित एवं उत्तेजित करते हैं, जिनके कारण व्यक्ति को कार्य करना आवश्यक हो जाता है।

डॉ. एस के. श्रीवास्तव के अनुसार वर्तमान समाज में तनाव के कई कारण हैं, जो कि इस प्रकार हैं :

(१) भौतिक कारण (Physical Causes)

(२) सामाजिक कारण (Social Causes)

(३) धार्मिक कारण (Religious Causes)

(४) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)

(५) राजनैतिक कारण (Political Causes)

(६) सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारण (Cultural & Economic Causes)

भौतिक कारण :

भौतिक कारणों से तात्पर्य भौगोलिक कारणों से है। यह भौगोलिक कारण समाज में तनाव की स्थिति उत्पन्न करते हैं। जब कोई व्यक्ति अधिक समय तक एक स्थान पर रहता है तो उस समूह के भाषा-विचार, रहन-सहन इत्यादि अन्य समूहों से भिन्न हो जाया करते हैं। अतः भौगोलिक आधार पर जो भावनाएँ किसी समूह के लोगों में बन जाती हैं, वे विभिन्न समूहों के मध्य प्रायः तनाव उत्पन्न कर देती हैं।

सामाजिक कारण :

"सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति का समाज के प्रति भी कुछ दायित्व और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यदि इन सामाजिक मूल्यों में समय के साथ संशोधन या परिवर्तन नहीं होता तो धीरे-धीरे वे रूढ़ होते जाते हैं और अपना महत्व खो बैठते हैं। इन खोखले एवं आरोपित मूल्यो की जड़ता से मुक्त होने की छटपटाहट ही संघर्ष को जन्म देती है।"[5] यदि समाज

में सामाजिक सम्बन्धों के स्थान पर सामाजिक दूरियाँ बनने लगती हैं तो धीरे-धीरे तनाव की स्थिति पैदा होने लगती है।

धार्मिक कारण :

समाज में कई धर्म के लोग अपने उपासक के विषय में अपने-अपने विचारों के आधार पर व्याख्या करते हैं। धार्मिक विचारों के कारणों से ही साम्प्रदायिकता की स्थिति अथवा संघर्ष की भावना आ जाती है, जो कि तनाव का रूप ले लेती है।

मनोवैज्ञानिक कारण :

सामाजिक तनाव को उत्पन्न करने में सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक कारणों को उत्तरदायी माना जाता है। जब भी विभिन्न समूहों के लोगों में ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना, परस्पर विरोधी विश्वास, संघर्ष की अभिवृत्तियाँ तथा पूर्वाग्रह उत्पन्न किए जाते हैं तो इन मनोवैज्ञानिक तत्वों की वजह से विभिन्न समूहों में तनाव की स्थिति उत्पन्न होने लगती हैं। अतः विश्वास, पूर्वाग्रह तथा अभिवृत्ति यह तीनों ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तनाव की स्थिति उत्पन्न करने में सबसे अधिक भूमिका अदा करते हैं।

राजनैतिक कारण :

विभिन्न वर्गों में तनाव को बढ़ाने में राजनैतिक दल का भी हाथ होता है।

प्रत्येक राजनैतिक दल के अपने कुछ पृथक् आदर्श, सिद्धांत और उद्देश्य होते हैं, जो दूसरी राजनीतिक पार्टी के बिल्कुल विरोधी हो सकते हैं और होते भी हैं। ऐसी अवस्था में राजनीतिक संघर्ष स्वाभाविक हो जाता है जो तनाव का रूप ले लेता है। अतः जो राजनीति से प्रेरित विरोधी भावनाएँ होती हैं वे सामाजिक तनाव उत्पन्न करती हैं। भारत में वर्तमान विभिन्न राजनीतिक दल के लोग जातीयता, भाषा, क्षेत्रीयता तथा साम्प्रदायिकता के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने के लिए विभिन्न वर्गों या समूहों में तनाव की स्थिति पैदा करते हैं। इसलिए वर्तमान सरकार को कई समस्याओं को सुलझाने में अधिक से अधिक परेशानियों या समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारण :

सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारण भी तनाव को बढाने में सहायक हैं। संस्कृति व्यक्ति तथा समाज के जीवन की विधि को अभिव्यक्त करती है। अतः सांस्कृतिक भिन्नताएँ जीवन की विधियों को एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर देती हैं। जिसके फलस्वरूप तनाव उत्पन्न होने लगता है। धनी एवं निर्धन समुदाय में एक दूसरे के प्रति आर्थिक दृष्टि से विरोधी भावनाएँ या पूर्वाग्रह पैदा होने लगते हैं, जिसकी वजह से इन समूहों में तनाव का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।"[6]

छठे दशक के बाद के कहानीकारों की कहानियों की प्रमुख विशेषता व्यक्ति को उसके परिवेश मे देखने की यथार्थ द्रष्टि है। व्यक्तिगत तनाव से संबंधित कहानियों

का मूल केन्द्र व्यकित है। इन कहानियों में मानव की वैयक्तिक समस्याओं, आर्थिक विषमताओं और विसंगतियों के परिणामस्वरूप तज्जन्य घुटन, कुण्ठा, वेदना, विषाद, संन्यास, अकेलेपन, अजनबीपन और मनोविकारों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखा जा सकता है।

सामाजिक परम्परा के अनुसार एक युवक और युवती विवाह की डोर से बँध जाते हैं तो परस्पर कोई वर्ग भेद नहीं रहना चाहिए। युवती जिस घर में आती है उस घर की बन जाती है। पति की उच्च या निम्न स्थिति का वह ध्यान नहीं करती है। पति उसका सर्वस्व बन जाता है। वह किसी भी हालत में पति के साथ रहने के लिए तैयार हो जाती है। परंतु आज के दम्पत्ति का यह आदर्श नहीं है। पारम्परिक मूल्यों के अनुसार पत्नी को पति के साथ और पति को पत्नी के साथ अपने इस पवित्र धार्मिक बंधन को अपनी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक असमानता को सोचे बिना परस्पर निभाना चाहिए।

यादवजी की "टूटना" कहानी बदलते सामाजिक तनाव और पति-पत्नी सम्बन्धों को व्यक्त करती है। लीना और किशोर परस्पर विवाह कर लेते हैं। लीना बडे बाप की बेटी है और किशोर साधारण परिवार का युवक है। दोनों प्रेम के आगोश में विवाह सूत्र में बँध जाने का निर्णय लेते हैं। लीना पिता के विरोध की परवाह नहीं करती। अपने अलग व्यक्तित्व की वजह से किशोर विवाह के बाद लीना के साथ सहज नहीं हो पाता है। "प्रतिष्ठा" हम लोगों के भाग्य की निर्मायक

क्यों? परन्तु ये सब घिसे-पिटे वाक्य आज उसके अपमान के दंश को कम नहीं कर पाते हैं। किशोर लीना के अभिजात संस्कारों के प्रतिकूल है। उसका गट-गट पानी पीना, चप्-चप् खाना और हरिओम की लम्बी डकार के साथ तृप्ति का संतोष प्रकट करना, यह सब लीना को पसंद नहीं है। "तुम्हें सभ्य समाज में उठने-बैठने का मौका नहीं मिला, इसलिए शायद यह नहीं जानते कि यह अशिष्टता है।" लीना को शौक था घर में अच्छे परदे हों, और किशोर को लगता है कि पुरानी साड़ियों के पर्दे क्या बुरे हैं। लीना चाहती थी कि घर में नया शानदार टी-सैट होना चाहिए। परन्तु किशोर के लिए इन सबका कुछ महत्व नहीं था।

वह घर के प्रत्येक काम मैं लीना की सहायता करता है। लीना जब सज-धज कर बाहर निकलती तो किशोर उसे देखता रह जाता। उसमें नफासत और आभिजात्य है। वह स्वयं को लीना के सामने अकिंचन महसूस करता। लीना उसके अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण पर हँसती है, क्योंकि वह स्वयं कॉन्वेन्ट में पढी है, प्रति दिन पति-पत्नी में चख-चख किसी न किसी बात को लेकर हुआ करती है और एक दिन लीना ने सख्त अवाज में कहा : "देखो किशोर, आज से, बल्कि इसी क्षण से हम लोग साथ नहीं रहेंगे। मैं भी सोच रही थी कि अब तुमसे बात कर ली जाए। न तुम अंधे हो न बहरे। तुम सिर्फ इन्फीरियोरिटी कॉम्प्लेक्स के मारे हुए हो। मगर इस कॉम्प्लेक्स का कोई इलाज नहीं है। मेरी हर बात तुम्हें दिखावा लगती है।" किशोर भी पूरे आवेश में आकर कहता है - "लाट साहब की बच्ची कहती है हमें (वैयक्तिक तनाव) इन्फीरियोरिटी कॉम्प्लेक्स है - हममें

बातचीत, उठने-बैठने की मैनर्स नहीं है। हम कंजूस और बदजबान हैं।"

किशोर में मध्यमवर्गीय संस्कार हैं और पुरूष अहं भी है, किन्तु सहज रूप में नहीं, अपने अवास्तविक रूप में, जहाँ वह आरोपित सा लगता है। लीना जैसी सुशिक्षिता सुसंस्कृत लड़की को वह पूरी तरह अपना नहीं सकता। बडे बाप की बेटी है, यह बात द्वेष की वैयक्तिक भावना उत्पन्न कर देती है।

किशोर के मित्र मि. मेहता प्रायः घर आते रहते हैं। लीना को उपहार आदि भी देते हैं। लीना उनके प्रति मैत्रीभाव रखती है, परन्तु किशोर शंकालु हो जाता है। उसे दोनों का मिलना-जुलना बिल्कुल पसंद नहीं है।

पारस्परिक सामंजस्य न होने के कारण पति-पत्नी अलग हो जाते हैं। अपने-अपने वैयक्तिक तनाव की वजह से इन दोनों में विघटन पैदा होता है और विवाहित सम्बन्धों को तोड़ देता है।

मोहन राकेश की कहानी "एक और जिन्दगी" मे प्रकाश और बीना पति-पत्नी हैं। विवाह के बाद कुछ समय के बाद पति-पत्नी अलग-अलग रहने जाते हैं। विवाह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए वह जुड़ नहीं पाता। दोनों अलग-अलग काम करके अपना-अपना स्वतंत्र ताना-बाना बुनकर जी रहे हैं। लोगों की वजह से वे कभी-कभी मिल लेते थे। लोगों की वजह से ही वे बच्चे को संसार में ले आये थे। बीना सोचती है, प्रकाश ने उसे फँसाया है और प्रकाश सोचता है कि अनजाने

में उससे अपराध हुआ है। बीना आत्मनिर्भर नारी है और ऊपर से अहंवादी भी है। पति-पत्नी में रागात्मक जुड़ाव आरम्भ से नहीं हो पाता और उनके दाम्पत्य सम्बन्ध विघटित हो जाते हैं। यहाँ तक कि विवाह-विच्छेद हो जाता है। परन्तु विच्छेद के बाद भी दोनों सन्तुष्ट नहीं हैं। टूटते हैं, टूटकर जुडना चाहते हैं, पर जुड़ नहीं पाते।

भारतीय परम्परा के अनुसार विवाह-विच्छेद पति-पत्नी में कुछ विशेष स्थितियों में ही हो सकता है। पत्नी की अहम्मन्यता अथवा आत्मनिर्भरता पति से अलगाव का कोई ठोस आधार नहीं है। परन्तु आज की स्थिति में आत्मनिर्भर नारी इन पुरातन मान्यताओं से कोई लगाव नहीं रखना चाहती, यहाँ तक कि वैयक्तिक सुख के लिए वह अपनी संतान के भविष्य की भी चिंता नहीं करती। आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। कामकाजी पत्नी वरदान भी है और अभिशाप भी क्योंकि बदलते समाज की परिस्थितियों को देखते हुए सुख और चैन की जिन्दगी गुजारनी है तो पति-पत्नी दोनों को धनोपार्जन करना आवश्यक हो गया है। एक ही कमाई पर चैन की जिन्दगी का मजा नहीं मिलता। दूसरी तरफ आज सीमित परिवार के कारण पत्नी को घर में कुछ अधिक काम भी नहीं बचता कि जिसमें वह दिन भर घिरी रहे। दिन का वक्त कहां गुजारा जाये? यह सवाल उनके सामने होता है। पढ़ी-लिखी होने का फायदा भी नहीं दिखाई देता। इन्हीं सवालों को समाप्त करने हेतु नौकरी करना पसंद करती है। पति को भी इससे कोई आपत्ति महसूस नहीं होती, क्योंकि उसकी कमाई से सुख-चैन के साधन अधिक जुटाए जा सकते

हैं। इसमें परिवार को आर्थिक सुरक्षा मिल जाती है मगर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का तनाव बढ़ जाता है।

इसी समस्या से जुड़ी 'दीप्ति खण्डेलवाल' की कहानी 'सन्धि-पत्र' का रोहित, "जिसने सोमा को, सोमा की पूरी आजादी के साथ स्वीकार किया है। सोमा उसकी संगिनी है, दासी नहीं.... और वह भी सीमा का साथी है, गुलाम नहीं।"[7]

इतने सशक्त विचारों पर भी उसका मन सन्तुलित नहीं है। उसमें पति होने का दंभ कहीं न कहीं अवश्य छिपा है जो उसे व्यक्तिगत तनाव की ओर ले जाता है। वह मानता है कि 'कम से कम नए युग की नारी को अपने अंग प्रदर्शन का पूरा अधिकार तो है ही। सीमा के इसी उन्मुक्त अंग प्रदर्शन पर तो वह रीझा था।"[8] उनके बीच कोई सीमा रेखा भी नहीं थी। रोहित अपने लिए स्वतन्त्र था। इसी वजह से वह सोमा के होते हुए भी रूबी के साथ अपने हसीन पल गुजारता है। सोमा इस संबंध को अनदेखा करती है। तो फिर वह क्यों न करे। कारण 'उनके बीच कोई संस्कार नहीं थे, कोई प्रतिबद्धता नहीं, उनका विवाह एक समझौता था। अति आधुनिक। फिर भी अपने-अपने मरुथलों में भटकते होते थे।"[9] आधुनिक विचारधारा भी उन्हें पूर्णरूप से जोड़ने में असमर्थ दिखाई देती है। घर का खर्च दोनों मिलकर चलते हैं। शेष के लिए वे अपने को स्वतन्त्र मानते हैं। और तनाव के कारण आम पति-पत्नी की जिन्दगी जी नहीं पाते।

सारी परिस्थिति से स्पष्ट होता है कि नयी पीढ़ी के मनुष्यों ने आधुनिकता को केवल ओढ़ लिया है। भीतर वही आदिम नर-नारी अभी भी जीवित हैं, जो उनसे छूट नहीं रहे हैं। पुरूष चाहता है कि वह अन्य नारियों से सम्बन्ध रखे किन्तु उसकी पत्नी मात्र उसके लिए सती-सावित्री बनी बैठी रहे। आधुनिकता के सहारे जब पत्नी उसके इन विचारों को ठेस पहुँचाती है तो उसका दंभ प्रखर हो उठता है। आधुनिकता का पर्दा फट जाता है। यहीं पर संघर्ष की भूमि तैयार हो जाती है। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि दोनों एक-दूसरे से अलग हो जाने पर तुल जाते हैं, किन्तु अलग होने पर भी समस्या हल नहीं होती।

समस्या तो यह है कि जिस सुख और चैन के लिए संयुक्त परिवार से टूट कर व्यक्ति एकल परिवार में बँधना चाहता है, निरन्तर सुख की आशा करता है। पर वह उसे मिल नहीं सकता। माता-पिता, बहन भाईयों से कटकर जहाँ वह जीना चाहता था, अब वहीं पर पत्नी से कटकर वह अकेला और निराश हो जाता है। आधुनिक बहू भी सास-ससुर, ननद-देवर इनसे कटकर जीना चाहती है, किन्तु पति से कटने पर उसे जिन्दगी बोझ लगने लगती है। अर्थात् आधुनिक परम्पराओं ने कुछ देने के बदले अधिकतम लिया है। इसी के साथ-साथ आधुनिकता में मनुष्य को निराशा में भटकने का रास्ता मिल जाता है और वह जाने किन-किन रास्तों पर निकल पड़ता है। इसी से जुड़ी दीप्ति खण्डेलवाल की प्रसिद्ध कहानी "बेहया" में पुत्र माँ के सम्मुख ऐसा सवाल उठाता है, जिसका जवाब वह दे नहीं पाती। सारा मुहल्ला जानता था कि वह मुहल्ले के पनवाड़ी लालचन्द की तीसरी

जोरू है किन्तु अपने उन्नत वक्षों को पारदर्शी ब्लाउज़ एवं सस्ती ब्रा से और उन्नत कर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। कोई आँख दबाकर अश्लील गीत गाता तो वह भी आँचल ठरकाती, भरपूर अंगड़ाई लेती। पति-पत्नी में बीस वर्ष का अन्तर होने पर उनमें पटती नहीं थी। पूरे सात साल बाद उसने बेटा जना तो सब मुहल्ले वाले तर्क भिड़ाते रहे। अशोक को पढ़ा-लिखा कर अफसर बनाने के चक्कर में वह शहर के बिगड़े रईस की रखैल तक बन जाती है। बच्चे को वह दहेरादून भेजना चाहती थी। एक दिन उसके बेटे को कल्लन पीटने लगा। पता चला - मार पीट का कारण कल्लन ने उसकी माँ को छिनाल कहा था। अपनी माँ को दी गई गाली वह सहन नहीं कर सकता था। इसलिए मारपीट पर उतर आया। उसका यों पूछना- "अच्छा माँ, तू ही एक बार कह दे कि तू बेहया नहीं है - मैं मान लूंगा। चाहे फिर हर कोई कहता रहे।"[10] माँ और दोनों अपने-अपने तनाव से गुजर रहे हैं। माँ झूठ बोल सकती थी किन्तु अपने पुत्र को कैसे झुठला सकती थी। अगर माँ सच बोलती है तो अपने बेटे से दूर होने का गम सताता है। माँ पुत्र के तनाव का कारण बन गई है और पुत्र माँ के तनाव का। साठोत्तरी कहानियों में आज हर रिश्ता तनाव ग्रस्त हो गया है। चाहे माँ-पुत्र का हो या बाप और बेटे का, हर रिश्ते में आज आधुनिकता या दूसरे शब्दों में कहें कि एक अराजकता की स्थिति पसरती जा रही है और इससे परिवार विघटित होते चले जा रहे हैं। से. रा. यात्री की कहानी 'सिलसिला' में पिता-पुत्र में बनती नहीं क्योंकि पुराने मूल्यों को लेकर टकराहट होती है और पिता पुत्र से अलग होकर चला जाता है। से. रा. यात्री ने कुछ झक्की पिता के नमूने अपनी कहानियों में यत्र-

तत्र दिये हैं। कलाकार पिता अपने पुत्रों से बार-बार अलग जाकर अपने पुश्तैनी मकान में रहते हैं। मिट्टी का यह मोह जब समाप्त हो जाता है, तब वे फिर से पुत्र एवं अपने परिवार के अन्य सम्बन्धियों के साथ रहते हैं। पिता के क्रोधी स्वभाव से बड़ा बेटा परिचित है किन्तु अन्य लोग जैसे ही उनके आने की सूचना पाते हैं, क्षणभर के लिए उनके चेहरे सफेद पड़ जाते हैं। पिता ने कभी किसी बच्चे को गोद नहीं लिया था। अतः जब उन्होंने अपने दोनों पोतों को एक साथ गोद में बिठा लिया तो सब परिवार को यह दृश्य एकदम अजीब एवं घोर अविश्वसनीय लगा क्योंकि अपने पुत्र एवं पुत्रियों को शायद ही भावुक होकर उठाया हो।

शाम को दफ्तर से लौटने वाले पुत्र को पिता बड़ी गर्मजोशी से मिलते हैं। दोनों की बातचीत से यह जरा भी जाहिर नहीं हुआ कि जब पिछली बार यह यहाँ से गये थे तो दादा से खूब लड़-झगड़कर गये थे, फिर कभी न लौटने की धमकी भी दे गये थे।

एक इतवार को जब चरण दा के दोस्त खाने पर आमंत्रित थे, तब एकाएक बादल गरज उठे। रेखा ने अपनी भाभी की साड़ी भागदौड़ के कारण कुछ ऊँची बाँधी थी, जिससे उसकी पिंडलियाँ साफ नजर आती थीं जिस कारण पिता ने बाहर के लोगों के सामने ही रेखा को बुरी तरह फटकारना शुरु कर दिया। सहयोगी ने वातावरण को हलका करना चाहा मगर उनकी कोशिश नाकाम गई क्योंकि पिता ने अपना उग्र रूप धारण कर लिया था। पार्टी का मजा किरकिरा गया था।

महेमानों के जाते ही चरण दा ने पिता को फटकारा कि अपने बच्चों की इज्जत का तो उन्हें ख्याल रखना चाहिए "आप उन लोगों के जाने के बाद भी उसे धरती में गाड सकते थे। जो तमाशा हमेशा करते आये हैं आखिर वही करते रहे।"[11] इस बात पर अपना सामान समेटकर जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। चाची को भी ले जाना चाहते थे। जबलपुर के लिए कोई गाड़ी न रहने पर भी वे घर से निकल गये। जाड़े की रात का जिक्र किया तो उन्होंने जवाब दिया - "ऐसी जगह से मुसाफिरखाने में जाकर पड़ना क्या बुरा जहाँ बेटा बाप को भिखारी गिने ?"[12] यहाँ बाप अपने परिवार से सुखी नहीं है वो मानसिक तनाव से गुजर रहे हैं। पुत्र को भी कोई चिंदा नहीं है, वह कहता है- "जब वह उधर से ऊब जायेंगे तो किसी दिन अचानक आ जायेंगे।" आज हर सम्बन्ध खोखला हो गया है। आज के परिवर्तन युग में व्यक्ति-व्यक्ति से कतरा कर अपनी-अपनी जिम्मेदारी के साथ चलना चाहता है। उसे कोई पुराने रिश्ते की जिम्मेदारी उठानी पसंद नहीं है। आज पीढ़ियों का संघर्ष सबसे ज्यादा तनावग्रस्त समस्या हो गई है।

उषा प्रियंवदा की बहुत चर्चित कहानी "वापसी" में जीवन भर जो आदमी अपने परिवार के हर सदस्य की सुख-सुविधायें जुंटाता रहा, स्वयं अकेला छोटे-मोटे स्टेशनों पर रहकर बाल-बच्चों को शहर की सुविधायें प्रदान करता रहा, उसकी सन्तानें उसके रिटायरमेन्ट के बाद उसे घर में रहने के लिए एक कमरा तक दे नहीं सकते। उसकी छोटी-मोटी आशाओं को मार देते हैं। यहाँ तक कि पत्नी भी शहरी सुविधायें छोड़कर उनके साथ चलने को तैयार नहीं होती, तब उसकी

आत्मा कितनी तड़पी होगी। एक ही परिवार के सभी सदस्यों के मन अपने ही परिवार के मुखिया के घर पर आ जाने से किस तरह बदल जाते हैं और परिवार के सभी सदस्यों के बीच का तनाव बढ़ जाता है - इस कहानी में बखूबी दिखलाया गया है। गजाधर बाबू ने अपनी पूरी जिंदगी रेल्वे की नौकरी में बिता दी। अब रिटायर होने के बाद अपनी बची-खुची जिन्दगी अपने परिवार के सदस्यों के साथ हँसी-खुशी बिताना चाहते हैं। उन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रहेंगे। परिवार से स्नेह पाने की आकांक्षा उन्हें घर ले आयी। किन्तु अब उनका घर, अपना नहीं रहा। बच्चे बड़े हो चुके थे। वे किसी हँसी-मजाक में उन्हें शामिल नहीं करते। अपने ही घर में कई बार माँगने पर उन्हें चाय तक नसीब नहीं होती। खर्च कम करने की बात जब वे पत्नी से कहते हैं, तो सहानुभूति जताने के बजाय उल्टे ही - "किसका पेट काटूँ? यही जोड़ गाँठ करते बूढ़ी हो गयीं, न मन का पहना, न ओढ़ा।"[13] गजाधर बाबू को लगा कि सारे परिवार की सब परेशानियों की जड़ वे ही हैं। उनके मन के तनाव को कम करने के बजाय शिकायत करती हुई पत्नी उन्हें कुरूप लगी।

सयानी लडकी को डाँटने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। बेटे अमर को भी कुछ कहने से पूर्व वह अलग होने की सोचने लगते हैं। कारण - "गजाधर बाबू हंमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बैठने की जगह नहीं।"[14]

दूसरे दिन ही बैठक से उनकी चारपायी हटा दी गयी और आचार और कनस्तरों की कोठरी में डाल दी गई। कितना बड़ा मकान उन्होंने बनाया था किन्तु उनके रहने के लिए एक कमरा तक नहीं। "उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गये हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें एक बूँद भी न मिली।" यदि गृहस्वामी के लिये पूरे घर में एक चारपाई के लिए जगह न हो तो वहाँ रहने से लाभ क्या? उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं।"[15] वे वापस लौटने का विचार करते हैं तब उन्हें न किसी ने मनाया न उनके साथ कोई जाने के लिए तैयार हुआ। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी। - "एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और देखने लगे और रिक्शा चल पड़ी। उन्हें जाने के बाद सब अन्दर लौट आये, बहू ने अमर से पूछा "सिनेमा ले चलिएगा न? बसन्ती ने उछलकर कहा, भैया, हमें भी।"[16] गजाधर बाबू अपने हरेभरे परिवार के बीच अपने आप को अकेला महसूस कर अपनी जिन्दगी को कोसते हुए, अपने व्यक्तित्व को कोसते हुए बड़े मानसिक तनाव से गुजरते हैं। आज सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सबसे बड़ा परिवर्तन जो हो रहा है, वह यह कि संयुक्त परिवारों के टूटने से, परिवार के सदस्यों की परम्परा टूटने से व्यक्ति अनेक स्तरों पर अलग हो जाता है। गजाधर बाबू की वापसी पुरानी पीढ़ी की हार है। एक ओर ऐसे परिवार हैं, जो माँ अपने पुत्रों के लिये अपने पति को छोड देती है और कहीं ऐसे बेटे हैं जो माँ के लिए पूरे परिवार के साथ दुश्मनी कर लेते हैं। अपने पिता तक को नहीं छोड़ते। दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी "देहगन्ध" इसी समस्या को उजागर करती है।

मनोहर के पिता अकसर उसकी माँ को पीटते थे। पिता रात को पीटते, तो सुबह सहज हो जाते। सुबह दाल में नमक कम हो जाने या कमीज में बटन न होने के कारण माँ को थप्पड़ जड़ते चले जाते तो शाम को दफ़्तर से लौटकर बिल्कुल सहज हो जाते।

मनोहर ने एक बार पिता से ऐसा झापड़ खाया था कि उसके जबड़े हिल गये थे। झापड़ का दर्द वह जानता था, अतः माँ से पूछा था, थप्पड का दर्द तुम्हें भी तो होता है न माँ। माँ की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगते हैं। तब का रूका हुआ बाँध बेटे की सहानुभूति पाकर उमड़ पड़ता है। वह कहती है - चोट का दर्द तो होता है बेटा, लेकिन क्या करें तेरे बाबू इतना भी नहीं समझते हैं कि वे मुझे कितनी चोट देते रहे? मार खाने वाला भूल जाता है चोट खाने वाला दर्द को कैसे भूल जाए?"[17] अपनी तकदीर को कोसते हुए वह चुप हो जाती है। माँ की चोटों का दर्द और उसकी व्याख्या सुनकर मनोहर को पिता से नफरत होती है। वह पिता को राक्षस और माँ को देवी कहने लगता है। वह हनुमानजी से प्रार्थना करने लगता है कि माँ की चोटों की बड़ी सजा बाबू को दे। और शायद भगवान ने सजा दे दी थी - पिताजी यौन रोग से ग्रस्त होकर, तड़प-तड़प कर, सडकर मरे थे। "उनकी चिता को आग देकर मेरे एक प्रतिशोध की आग शांत हो गई थी।"[18]

पिता-पुत्र के बीच की नफरत और प्रतिशोध की भावना के कारण पुत्र अपने आप में एक तनाव से गुजरता हुआ जिन्दगी जीता है, अपनी माँ के साथ। आज

परिस्थितियाँ बदल गई हैं। पति-पत्नी की भिन्न प्रकृति के कारण ही नहीं, बच्चों का स्वभाव माता-पिता से भिन्न होने पर भी परिवार में तनाव होता है।

परिवार को स्थायित्व प्रदान करने में विवाह महत्वपूर्ण अंग है। लेकिन एक निश्चित अवस्था तक विवाह हो जाने की स्थिति में ही यह स्थायी हो सकता है। उस अवस्था को पार कर जाने के बाद किये जाने वाले विवाह में पति-पत्नी में असामंजस्य की स्थिति पैदा होने की संभावना अधिक होती है। अपने अकेलेपन में रहते हुए व्यक्ति के विचार और आदतें इतनी दृढ़ हो जाती हैं कि उन्हें बदल पाना बहुत कठिन होता है। अकेलापन ही उसकी नियति बन जाता है। फिर समाज के साथ वह अपना सम्बन्ध बनाए रखने की चेष्टा बहुत कम करता है - "अक्सर एकान्त और अकेलेपन की परिस्थितियाँ व्यक्ति के भावात्मक विकास को रोक कर उसे भावी सुख से दूर ही नहीं करतीं, बल्कि समाज से उसका अलगाव और बढ़ा देती हैं।"[19]

उर्मिला मिश्र की कहानी "सलाखों के उस पार" में लडकी परिवार की जिम्मेदारी उठाती हुई और अपनी इच्छाओं का गला घोंटती हुई अपने माँ के देहान्त के बाद बिल्कुल अकेली पड़ जाती है। एक तरफ बाप दूसरी शादी कर लेता है। नई माँ अपने बच्चों में ही रची पची रहती है। तभी बाप की नौकरी छूट जाती है और पूरी जिम्मेदारी उस पर आ जाती है। न वह यही कर सकती है न अलग रह कर घर को चला सकती है।"[20]

यहाँ परिवार विघटित नहीं होता मगर परिवार की बड़ी लड़की अपने आप को वैयक्तिक तनाव से गुजरती हुई अपनी जिम्मेदारियाँ निभाती हुई भी परिवार से अलग-थलग रहती है। 'सबसे अलग.... सबसे दूर कर दिए जाने का अहसास उसे सारी-सारी रात सालता रहता है।' यहाँ परिवार के सदस्यों की जिम्मेदारी की वजह से लडकी अपनी शादी और अपनी जिन्दगी के लिए नहीं सोचती है तो मोहन राकेश की कहानी "सीमाएँ" में एक ऐसी लड़की के तनाव को व्यक्त करती है जिसमें कहानी की नायिका उमा को घर में सभी सुविधाएँ होने पर भी एक अभाव का अनुभव होता रहता है। वह दिखने में सुंदर नहीं है। जब भी वह शीशे के सामने खड़ी होती है उसे अपने आप पर झुंझलाहट होती है। इसीलिए वह किसी के यहाँ आना जाना नहीं चाहती। "उसे मिडिल पास किए चार साल हो गए थे। तब से अब तक वह उस सन्धि-काल में से गुजर रही थी जब विवाह नहीं होता। माता-पिता जिस दिन भी विवाह कर दें, उस दिन उसे पत्नी की प्रतीक्षा करने के जीवन का कोई ध्येय बनकर पति के घर में चला जाना था।"[21] लेकिन उसके मन मे यह टीस है कि उसकी असुन्दरता को देखकर उससे कौन विवाह करेगा। अपनी सहेली के प्रेम सम्बन्ध को सुनकर उसके मन में रोमांच होता है। लेकिन वह हर समय अनमनी सी रहती है। इसीलिए एक दिन भीड़ में जब वह पुरूष स्पर्श का अनुभव करती है तो उसे दुनिया बदली हुई सी लगती है। लेकिन दूसरे ही क्षण वह पाती है कि उसके गले की सोने की जंजीर गायब है।

अकेले पात्र अक्सर अपने जीवन में अकेले रहने के लिए विवश हैं। वे चाहते

हैं कि उन्हें इससे छुटकारा मिले लेकिन ऐसा मौका ही नहीं मिल पाता। वे अपने आप को फालतू और असहाय महसूस करती है। इसका मुख्य कारण हमारी पारिवारिक बनावट भी है जहाँ बच्चे को इस तरह की स्थिति के लिए तैयार ही नहीं किया जाता। बच्चा यह देखता है कि उसके सारे कार्य उसके माता-पिता द्वारा पूरे कर दिए जाते हैं। लेकिन जब वह बड़ा होता है तब भी उससे यह आशा नहीं की जाती कि वह अपनी समस्या का समाधान खुद खोज लेगा। ऐसे बच्चे बडे होने पर भी अपने परिवार पर निर्भर रहते हैं। यदि परिस्थितिवश उन्हें अपना घर छोड़ना पड जाता है तो नई स्थिति उनके लिए विकट हो जाती है।

मोहन राकेश कृत "मिस पाल' कहानी में परिवार में माता-पिता के प्यार के अभाव के कारण "मिस पाल" कहानी की नायिका अपने जीवन के आरम्भ से ही कुंठित हो जाती है। वह नौकरी करती है। कालान्तर में सेक्स भावना भी उसमें उत्पन्न होती है, जो कि सहज है। परन्तु वह जीवन में कभी इतना साहस नहीं जुटा पाई कि किसी पुरूष से आधुनिक नारी के समान सम्बन्ध स्थापित करके अपने अतृप्त मन को सन्तुष्ट कर सकी हो। मनोभावों की तुष्टि या अकेलेपन को दूर करने के लिए वह कोई महिला मित्र भी नहीं बना पाई, जिसके मधुर साहचर्य में उसके जीवन का सन्नाटा झंकृत हो उठता।

असुंदर होने के कारण उसका विवाह नहीं हो पाता। उसके माता-पिता भी इसकी चिन्ता नहीं करते हैं। पन्द्रह वर्ष पूर्व नौकरी छोड कर वह एक पहाडी ग्राम

में एकाकी जीवन बिताने पर विवश है।

मिस पाल परम्परावादी नारी है, जिसे माता-पिता से कोई शिकायत नहीं है। वह स्वयं भी आज की प्रबुद्ध नारी के समान इस दिशा में कोई प्रयास नहीं करती। भाग्य के सहारे अपना जीवन छोड देती है। धन सम्पत्ति का लोभ दिखाकर किसी युवा पुरूष को भी अपने पास नहीं रखती है। असुन्दर होने के कारण विवाह नहीं हो पाता यही उसका वैयक्तिक तनाव है जिसके कारण वह परिवार से अलग रहकर अपने आप को कुंठित करती है।

निर्मल वर्मा की कहानी "परिन्दे" में एकाकीपन की घुटन को जीवन में बड़ी कुशलता से उभारा गया है। लतिका सब कुछ सहती है, पर करती कुछ नहीं। कोई विवशता नहीं है, केवल जीवन जीने में किसी सिद्धांत को अडिग रूप से मान लेना ही उसकी लाचारी है।

लतिका एक हिल स्टेशन पर काफी समय से रह रही है। छुट्टियों में वह कभी घर नहीं जाती। उसकी भावनाएँ बर्फ के समान शीतल हो चुकी हैं। कमरे की खिडकी से देखा कि परिन्दे उड़ते चले जा रहे हैं, अनजान प्रदेशों की ओर, परन्तु वह उन विचित्र शहरों की ओर कभी नहीं जाएगी। गिरीश नेगी से लतिका का परिचय हुआ। वह काश्मीर जाकर कभी वापस नहीं आया। मरनेवाले के साथ मरा नहीं जाता। गिरीश नेगी कुमाऊँ रेजीमेन्ट का कैप्टन था। गिरीश के साथ उसकी

तमाम यादें सिमटी हैं।

लतिका का जीवन उसे धोखा दे गया। वह मि. ह्यूबर्ट के संकेतों को समझती है, परन्तु संस्कारों को कभी भी एक झटके से कुचल डालना सरल नहीं होता। उसके संस्कारों के अनुसार नारी के जीवन में एक ही पुरूष हो सकता है। वह केवल एक को ही समर्पित हो सकती है।

संस्कार बदल रहे हैं, परन्तु सम्पूर्ण रूप से कुछ भी बदल पाना संभव नही है। परिवार से दूर वह इस एकान्त पहाड़ी स्थान पर रहती है। परिवार ने उसके निर्णयों को बदलने का कुछ प्रयास किया हो, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता है। लतिका स्वयं भी, उसका व्यक्तिगत जीवन कुछ भी रहा हो, अपने परिवार से कोई लगाव या जुड़ाव महसूस नहीं करती है। उसके जीवन की एक निजी घटना उसे परिवार से विलग कर देती है, परन्तु बीते दिनों को स्मृतियों को भुलाकर वह सहज नहीं हो पाती है।

नारी चाहे अकेली हो या विवाहित, वैयक्तिक तनाव उसके लिए परिवार की सौगाद की तरह मिलता है। उर्मिला मिश्र की कहानी 'मर्यादा' मे एक नवविवाहिता की स्थिति का बड़ा यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किया गया है। हरेभरे परिवार में बहू आती है। पति के सामने परिवार वाले उसकी काफी तारीफ करते हैं। मगर कुछ दिनों के बाद वह व्यवहार सिर्फ पति के सामने ही होता है, उसकी अनुपस्थिति में एक नौकरानी से भी बदतर व्यवहार उसके साथ किया जाता है। मगर माँ के द्वारा

सिखाई गई बात उसे सदैव याद रही है - "परिवार के स्नेह-सूत्र जुडे रहें। यही तुम्हारा धर्म होगा, और यही तुम्हारी मर्यादा।"[22]

वह परम्परागत परिवार की बहू है जहाँ पहले दिन बहू की आरती उतारी जाती है। पहले सप्ताह उसके गुण बखाने जाते हैं। पहले महिने भर उसकी बलैया ली जाती हैं। माँ ने सीख दी थी कि "देख बेटी..... एक गाँठ में बँधे परिवार का सूत्र तेरे कारण टूटा है, यह मैं कभी न सुनूँगी।"

माता-पिता के रूप में सास-ससुर कब समझेंगे कि पराये घर की बेटी .... उनके हाथों का खिलौना नहीं, परिवार की सम्मानित सदस्या है। उसकी अपनी इच्छाओं, कामनाओं और भावनाओं का छोटा-सा संसार है।

मन में भावना न होते हुए भी पूरे परिवार की सेवा करती है। अपना अलग घर बसाना चाहती है। मगर माँ की दी हुई सीख भूलती नहीं, उसे अपना कर्तव्य समझकर सहती चली जाती है।

एक और कहानी उर्मिला मिश्र की "भीड के बीच खोया रास्ता" में एक गाँव की लडकी की कहानी है। उसके मन में विवाह से पूर्व ढेर सारी कल्पनाओं के मोतियों की माला गुँथी हुई है। वह अपने मामा द्वारा बताया रिश्ता अपने बाबूजी की वजह से स्वीकार कर लेती है। और दुहाजू के साथ उसकी शादी कर दी

जाती है। जब कि दूसरी पत्नी का सुख उसके नसीब में न था। मगर बाद में दोनों साथ-साथ रहती हैं। परन्तु उसका जमीर उसे कोसता रहता है कि एक औरत का सुख छीनकर वो कभी सुखी नहीं रह पायेगी और एक दिन पूरा परिवार छोड़कर चली जाती है।

"संसार की भारी भीड़ के बीच मुझे नयी शरण ढूँढनी है.. । जो खोया भले ही हो, परन्तु मिलेगा अवश्य... कहीं न कहीं... इसी भीड़ के बीच।"

मन्नू भंडारी लिखित "एखाने आकाश नाई" में ऐसी मध्यमवर्गीय नारी का चित्रण है, जो अपने परिवार की प्रगति के लिए नौकरी करती है। वह जब ससुराल आती है, तब घरवाले उससे घरेलू कार्यों में सहायता की अपेक्षा रखते हैं। घर की स्थिति ठीक नहीं है। ननद कॉलेज नहीं जा सकती। इस प्रकार घर की हालत को देखकर वह पति से कुछ पैसे घर भेजने के लिए कहती है। लेकिन वह घर पर पैसे नहीं भेजना चाहता या भेज पाता। न ही बहन को साथ रखना चाहता। पति-पत्नी दोनों को नौकरी करनी पड़ती है। सीमित साधनों में गुजारा करना पडता है, फिर संयुक्त परिवार के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे हो? पारिवारिक मूल्य को तोडने में अर्थ मूल्य को जिम्मेदार माना जा सकता है। यही कहानी की नायिका की मनोदशा है। कमाने पर भी अपने परिवारवालों की सहायता नहीं कर पाती।"[23]

गुजराती कहानीकारों ने इस तनाव को दूसरे रूप में व्यक्त किया है -

भगवतीकुमार शर्मा की "कैसेट" कहानी की कमला की एक कमजोरी थी कि वह पुरूष के बगैर अकेली नही जी सकती थी। उसके प्रेमी-पति ने उसे छोड़ दिया था। जब वह बिल्कुल अकेली रह जाती थी तब अपने से विपरीत स्वभाव के व्यक्ति का सहारा लेती थी। उसे हमेशा धोखे का डर रहता था लेकिन उसके परिचय में आनेवाले हर पुरूष ने उसकी कमजोरी का लाभ उठाया था। जो भी आता वह जब तक जी चाहता रहता था और मरजी आने पर चला जाता था।"[24]

कहानी में अधिकतर अकेलेपन का भय या पीड़ा, अपनत्व का अभाव होना है। इन कहानियों के अनुसार दूसरों की उपस्थिति और निकटता विशेषकर, परिवार, माता-पिता, पत्नी, नाते-रिश्ते पर ही जीवन की सार्थकता निर्भर करती है।

मधुराय की "डमरू" कहानी की तिलोत्तमा ऐसी ही युवती है। उसे सर्विस करते हुए दस साल हो गये थे। पिता की मृत्यु के बाद परिवार के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए उसने नौकरी शुरु की थी। नौकरी करते-करते उसके स्वभाव में रुखापन आ गया था। जब उसने सर्विस शुरू की थी तब बड़ी कोशिशों और मेहनत के बाद वह आधे घण्टे मे एक कागज टाइप कर पाती थी। किसी सम्बन्धी की पहचान से उसे सर्विस मिली थी और गिरते-पड़ते आज दस साल उसकी जिन्दगी की शुरुआत के दस साल थे। उसकी माँ कहती - तिलोत्तमा बेटी नहीं, बेटा है।

पुरुष का सामना करने की तिलोत्तमा में हिम्मत नहीं थी इसीलिये वह शादी के लिये मना कर देती है। सारे घर का बोझ उठाने की हिम्मत उसमें थी लेकिन जिन्दगी में शादी करके घर बसाने की, बच्चों की व्यक्तिगत जिम्मेदारी उठाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। पुरुष का सामना न कर पाने की हिम्मत या कायरता का एक कारण यह भी हो सकता है कि जिस तरह उसके पिता की मृत्यु से सारा परिवार बेसहारा हो गया, वह उस स्थिति को दुबारा झेलना नहीं चाहता, लेकिन उसके नौकरी कर लेने से परिवार को सहारा मिल गया और उसके तिनके बिखरने से बच गये। लेकिन अगर यही घटना उसके साथ घटित हुई होती और शादी से पहले ही नौकरी छोड़नी पड़ती और शादी के बाद वह बेसहारा बन जाती। उसके स्वभाव में नीरसता और रुक्षता आ गई, जिसने उसके जीवन को सार्थक नहीं होने दिया। इस नीरसता के कारण उसे जिन्दगी में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रही। इसी तनाव के साथ जीती तिलोत्तमा में जिन्दगी और मौत का भी कोई भाव नहीं रहा है।"[25]

"क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है -ऐसा अकेलापन जो कहीं न कहीं आज सबके अन्दर मौजूद है? "[26]

रघुवीर चौधरी की कहानी "राजकुमारी" में राजकुमारी को पढ़ाने के आनेवाले मास्टर से उसका आकर्षण बढता जाता है। लेकिन एक राजकुमारी होने के कारण अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाती। राजाशाही कुटुंब में वह अपने

आपको स्वतंत्र नहीं पाती और अपने आपको बंधनग्रस्त महसूस करती है। यही उसका वैयक्तिक तनाव है, जो उसका पीछा नहीं छोड़ता और परिवार होते हुए भी अपने आपको अकेलेपन का अहसास होता रहता है, क्योंकि वह अपने विचार किसी के साथ बाँट नहीं पाती।

जीवन में अकेलापन (lonelyness) महसूस करने के कई कारण हो सकते हैं और रूप भी। मनुष्य जब अपने जीवन में किन्हीं कारणों से एकरसता (mo-notonous) और कटु वेदना का अनुभव करता है तब भी वह सफलता की पीडा से व्यथित रहता है। कुछ लेखकों ने अपनी कहानियों में जीवन की एकरसता का चित्रण किया है। आज के इस यांत्रिक युग में व्यक्ति किस तरह मशीनी जिंदगी जी रहा है, यह बात कई कहानियों में मिलती है।

कुसुम अँसल की कहानियाँ तृप्त व्यक्ति के अतृप्त मन की तहों का स्पर्श करती हैं। और एक ऐसे संसार को हमारे सामने ला खड़ा करती हैं जिसमें तृप्ति और अतृप्ति दोनों का ही भटकाव मुखर हो उठता है। वस्तुतः इन कहानियों का परिवेश उच्च मध्यमवर्गीय है।

धीरूबेन पटेल की कहानी "दीकरीनुं धन" में शकुन्तला भी अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी से तंग आ चुकी थी। नौकरी करके तथा पैसा कमा के उसने अपना फर्ज अदा किया था। भाई को पढ़ाने के बाद उसका कर्तव्य पूरा हुआ था। लेकिन

उसके बाद भी उसकी ओर ध्यान देने के लिए किसी को फुरसत नहीं थी। एक-एक करके जन्मदिन आते गये और एक दिन उसने देखा कि वह बूढी होती जा रही है। उम्र तो चौबीस की थी मगर रूप का आकर्षण कम हो चुका था। देखने पर वह अत्यन्त साधारण अनाकर्षक-सी लगती थी। शकुन्तला को लगा - "अरे, जवानी आकर चली गई? अब क्या इन्हीं फाइलों में सिर खपाना होगा ? उसे घडी भर लगा - नहीं, नहीं, पर कुलीन घर की कन्या कैसे कहे कि उसे ब्याह करना है, वर ढूंढ दो।"[27]

बचपन में डर और कुतूहल, किशोरावस्था का कुछ आनन्द और आकांक्षाएँ और बाद में इस बूढ़ी जवानी में पल-पल मिलती उपेक्षा और उत्कट इच्छा का केन्द्र रूप ससुराल अब तो शकुन्तला के मानसपट पर से धीरे-धीरे अदृश्य होता जा रहा था। अभी भी शकुन्तला के सिर पर चार सालों का बोझ था। चार सालों के बाद वह अट्ठाईस साल को ही जायेगी और फिर दो साल के बाद तीस की। उसके बाद तो सोचा ही नहीं जा सकता। वह शून्य में ताक रही थी और निराधार भाव से आगे का मार्ग ढूंढ रही हो ऐसा अनुभव कर रही थी। एकलता उसके वैयक्तिक जीवन में छा गई थी। रामदरश मिश्र ने लिखा है - "व्यक्ति अपने भरे-पूरे परिवार में, भीड़भाड़ में अपने को निपट अकेला पा रहा है, समृद्धि के बीच भी उसे अथाह रिक्तता का अहसास होता है, प्रिय से प्रिय व्यक्ति के संग रहकर भी अजीब निस्संगता का बोध उसे होता है।"[28]

वस्तुतः अकेलापन ही वर्तमान समय में तनाव मानव जीवन की नियति बन गया है। व्यक्ति अपने मन में कई ऐसी ग्रन्थियों को पाल लेता है, जो उसे सम्बन्धों को नकारने की तरफ प्रेरित करती हैं।

मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियों में "खाली" कहानी का जुगल व्यक्तिवादी है। उसे किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। वह अपने-आप में सीमित रहता है। वह चाहता हे कि उसकी पत्नी भी इसी तरह का व्यवहार करे। इसलिए तोषी और उसके सम्बन्ध बिगड़ते हैं। "जुगल के साथ रहते हुए उसकी जिन्दगी बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कटती गई थी। जुगल को उसके मायके के लोगों से चिढ़ थी, अपने घर के लोगों से चिढ़ थी, पास-पड़ौस के लोगों से चिढ़ थी, हर आने-जाने वाले से चिढ़ थी। कभी-कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय हर एक से चिढ़ है, बल्कि अपने-आप से भी चिढ़ है।"[29]

मोहन राकेश की कहानी "गुमशुदा" में भी एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो अपने भरे-पूरे परिवार में भी अपने को निरर्थक और अकेला महसूस करता है। वह एक के बाद एक कई तरह के काम करता है, लेकिन थोडे दिनों में हर काम से ऊब जाता है। दफ्तर से निकलने के बाद समय गुजारना उसके लिए मुश्किल होता है। न तो क्लब जाना चाहता है न किसी के घर आना-जाना ही उसे पसन्द है। अपने घर में बंद होकर भी वह नहीं बैठ पाता। इसीलिए वह हमेशा किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करता है जो थोड़ी देर उससे बात करे ताकि उसका समय

आसानी से कट जाय। वह कहता है - "मैं अपनी जिन्दगी को ही देखता हूँ। मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ। मेरे पास अच्छी नौकरी है, अच्छा सजा हुआ घर है, सुन्दर पत्नी है, जो मुझसे काफी प्रेम करती है, काम करने के लिए नौकर हैं, सब कुछ हैं, मगर फिर भी मुझे जिन्दगी फीकी-फीकी और अर्थहीन-सी लगती है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ।"[30]

"कुछ व्यक्तियों में परिवार से अलग अपनी व्यक्तिगत श्रेष्ठता का गहरा अहसास होता है।"[31]

व्यक्ति स्वयं को महत्वपूर्ण मानता है, लेकिन लोगों द्वारा महत्व न दिये जाने पर तनाव में जीता रहता है। विशेष रूप से मध्यवर्गीय व्यक्ति में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य न होने या उचित सम्मान न मिलने पर हीनता की ग्रन्थि पैदा होने लगती है। हीनता से पीड़ित होने के कारण वह अपनी बात को मनवाने के लिए लड़ाई-झगड़ा करता है। यहाँ तक कि मार-पीट भी करने लगता है।

"जख़्म" कहानी का नायक अपनी बेकारी के कारण हीनता महसूस करता है। वह अपने मित्र से कहता है - "इस बार बेकारी में तो मुझे लग रहा था कि मैं तुमसे भी कट गया हूँ... अपने में बिलकुल अकेला पड़ गया हूँ। मुझे यह भी अहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हुआ मान लिया है... बीता

हुआ और गुमशुदा।" वह इस स्थिति में रहना नहीं चाहता। उसे लगता है कि उसका अस्तित्व खतरे में पड गया है। वह यह स्वीकार करना नहीं चाहता कि उसके मित्र यह समझें कि वह बेकारी के कारण उनसे चिपका रहता है। इस बात से उसके अहं को ठेस पहुँचती है।

व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे अधिक तनाव स्त्री-पुरूष के आपसी सम्बन्ध में होता है। महीपसिंह की कहानी 'घिराव' की सुम्मी अपने पति अमर से तीन वर्ष से अलग है, पर रास्ते में चलता हर व्यक्ति उसे अमर लगता है। अमर उसे बुरी तरह से घेरे हुए है पर इस बात का भी उसे तीव्र अहसास है कि यह घिराव अमर की तरफ से नहीं, उसके मन का ही है। और हर वक्त वह मानसिक तनाव से गुजरती है। सूर्यबाला की 'रेस' कहानी में महानगर की तेज रफ़्तार के कारण पति सुधीर आगे रहना चाहता है जबकि पत्नी राशि यह अनुभव करती है कि पति सुधीर उससे दूर जा रहा है। राशि अपनी सांस्कारिक भावनाओं को संजोये हुए है जबकि सुधीर उससे मुक्त हो गया है। पत्नी का भावनाओं का ख्याल न रख पाने का उसके मन में कोई अवसाद नहीं है। भौतिक सुख-सुविधायें जुटाकर भी दोनों सुखी नहीं हैं। राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लडकी की कहानी' में पति-पत्नी सम्बन्धों में तनाव का कारण तीसरे आदमी की उपस्थिति है। नायिका सविता के जीवन में एक ओर पति है तो दूसरी ओर प्रमोद। पति को मालूम है कि उसकी पत्नी प्रमोद से प्रेम करती है। इसीलिए दोनों के बीच के तनाव का कारण तीसरा आदमी रहता है। धर्मवीर भारती की 'सावित्री नंबर-२' कहानी में सावित्री की पीड़ा यह है कि उसे सन्देह है कि उसका पति किसी अन्य स्त्री के साथ संबंध रखे हुए है और यही कुण्ठा उसे बेचैन बनाकर तनाव में रखती है। मन्नू भंडारी की 'तीसरा आदमी' कहानी में पति-पत्नी के बीच बच्चे के

अभाव से जीवन में कटुता, मनोमालिन्य, घुटन, आत्महीनता आदि पैदा हो जाती है। पति के मन में स्वयं के प्रति एक हीनग्रंथि घर कर लेती है, स्वयं को पौरूषहीन समझने लगता है। साथ ही सन्देह व भ्रम के चक्र में फंस कर पत्नी व उसके मित्र मित्र आलोक के सामान्य वार्तालाप भी उसे तनावग्रस्त कर देता है। फलतः सम्बन्धो में खिंचाव-दूरियाँ बढ़ने लगती है।

ज्ञान प्रकाश की 'यातना' मृदुला गर्ग की 'कितनी कैद' विजय मोहन सिंह की 'वे दोनों' आदि कहानियों में तीसरे आदमी के आगमन से उत्पन्न घुटन और तनाव से सम्बन्धों के विश्रृंखलन का चित्रण है।

दूधनाथसिंह की कहानी 'सब ठीक हो जायेगा' शारीरिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से असमर्थ पति की कहानी है। पत्नी अपने ही घर में रात को किन्हीं दूसरे लोगों में उलझी रहती है। पति सब समझता है, वह एक पस्त, बीमार, निकम्मा आदमी है। वह जीना तो चाहता है, इसलिए उसे आशा है कि सब ठीक हो जायेगा। इन्हीं की कहानी 'प्रतिरोध' भी पति-पत्नी के बीच के तनाव को प्रस्तुत करती है। रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी' रोमांटिक भाव-बोध को हास्य-व्यंग्यपूर्ण मजाक उड़ाने के लिए लिखी गई है। आधुनिक स्त्री-पुरूष अब उस स्तर को पार कर चुके हैं जहाँ किशोर अवस्था के रोमानी अर्थात् बचकाने प्रेम को लेकर नीति-अनीति की धारणायें बनती हैं। मन्नू भंडारी की कहानी 'ऊँचाई' शिवानी के दाम्पत्य सम्बन्धों में शरीर की पवित्रता को आवश्यक नहीं मानती। उसका कहना है कि यदि किसी परिस्थितिवश किसी स्त्री को अपने पति के

अलावा अन्य पुरूष को अपना शरीर समर्पित करना पड़े तो भी जिस ऊँचाई पर उसके पति की प्रतिमा रहती है उस ऊँचाई पर कोई अन्य पुरूष नहीं पहुँच पाता और अगर दाम्पत्य सम्बन्धों का आधार इतना ही छिछला है तो ऐसा आधार तोड़ने में भी कोई बुराई नहीं।

साठ के बाद की अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों से प्रारम्भ होती हैं और एक अर्थहीनता की अनुभूति के साथ समाप्त हो जाती हैं। आज हम न तो एक दूसरे के बिना रह सकते हैं और न एक-दूसरे को बर्दाश्त कर सकते हैं - यही आज की जिन्दगी के प्रेम का यथार्थ है।

वस्तुतः आज के युग में सम्बन्ध बिलकुल कच्चे धागे के समान हो गये हैं। जो तनिक-सा तनाव भी सहन नहीं करते और टूट जाते हैं। पति-पत्नी के बीच का द्वन्द्व केवल पारम्परिक नहीं है बल्कि दोनों अलग-अलग भी इस द्वन्द्व को ढोते हैं। इस सम्बन्ध में श्रीकान्त वर्मा लिखते हैं - "हम दूसरे को न तो पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं, न पूरी तरह अस्वीकार। इस स्वीकार और अस्वीकार के बीच एक भयानक छटपटाहट है और यही आज के स्त्री-पुरूषों की नियति है।"[32] आज व्यक्ति व्यक्ति से कट रहा है और अकेलेपन की अनुभूति से गुजर रहा है। हेतु भारद्वाज ने कहा है कि - "स्वातन्त्र्योत्तर काल में नये परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव मनुष्य के परस्पर सम्बन्धों पर पड़ा। उसके सभी परम्परागत रिश्ते टूट गये तथा समाज में रहते हुए भी उसे एक विचित्र अकेलेपन की अनुभूति होने लगी।"[333]

निष्कर्ष यही है कि आज नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के मध्य गहरा अंतराल आ गया है जिसके कारण माता-पिता और संतान के संबंध मधुर न रहकर तनावपूर्ण और औपचारिक हो चुके हैं। आज का युवा बदलती मानसिकता और माता-पिता के पुराने संस्कारों के बीच घुटन महसूस करता है। इसके कारण परिवार में तनाव उत्पन्न होने से परिवार विघटित होने लगे। आर्थिक तंगी मनुष्य के पारिवारिक सम्बन्धों को नष्ट कर मानसिक तनाव उत्पन्न करती है। पति-पत्नी के व्यक्तित्व की टकराहट, दोनों के जीवन-स्तर की भिन्नता, तीसरे आदमी का आना आदि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के तनाव का मुख्य कारण है।

****

सन्दर्भ सूचि

1. सामाजिक तनाव विविध परिदृश्य - डॉ. सतीष चन्द्र शर्मा, डॉ. तारेश भाटिया, पृ. 152
2. आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ - पृ. 4-5-6
3. The Polish Peasant in Europe and America - Thomas and F. Zauniecki
4. विघटन का समाजशास्त्र - डॉ. राजेन्द्र जायसवाल - पृ. 204
5. सविता जैन का कथन - हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. नरेन्द्र मोहन - पृ. 132
6. सामाजिक तनाव विविध परिदृश्य - डॉ. एस. के. श्रीवास्तव, पृ. 85
7. सन्धि-पत्र - दीप्ति खण्डेलवाल - पृ. 2, हिन्दी कहानी - 1976
8. सन्धि-पत्र - दीप्ति खण्डेलवाल - पृ. 3
9. सन्धि-पत्र - दीप्ति खण्डेलवाल - पृ. 7
10. दीप्ति खण्डेलवाल - नारी मन -पृ. 15
11. से. रा. यात्री - सिलसिला - केवल पिता - पृ. 51
12. से. रा. यात्री - सिलसिला - केवल पिता - पृ. 54
13. उषा प्रियंवदा - वापसी - जिन्दगी और गुलाब के फूल - पृ. 136
14. उषा प्रियंवदा - वापसी - पृ. 138
15. उषा प्रियंवदा - वापसी - पृ. 140
16. उषा प्रियंवदा - वापसी - पृ. 142
17. दीप्ति खण्डेलवाल - देहगन्ध - दो पल की छाँह - पृ. 57
18. दीप्ति खण्डेलवाल - देहगन्ध - पृ. 56
19. गॉर्डन चार्ल्स रोडरमल - हिन्दी कहानी- अलगाव का दर्शन - पृ. 132
20. उर्मिला मिश्र - सलाखों के उस पार (कहानी संग्रह) - पृ. 1986
21. मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ - पृ. 34
22. उर्मिला मिश्र - मर्यादा - सलाखों के उस पार (कहानी संग्रह)
23. मन्नू भंडारी - इखाने आकाश नाई - मेरी प्रिय कहानियाँ
24. भगवतीकुमार शर्मा - व्यर्थ कक्को छळ बाराखडी

25. मधुराय - डमरू - रूप कथा (संग्रह)
26. नामवरसिंह - कहानी - नयी कहानी - पृ. 173
27. धीरूबेन पटेल - दीकरीनुं धन - पृ. 98
28. रामदरश मिश्र - हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान - पृ. 65
29. खाली - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 30
30. गुमशुदा - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 464
31. मोहन राकेश - साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - पृ. 109
32. श्रीकान्त वर्मा - नयी कहानियाँ - दिसम्बर 1979 - पृ. 95
33. हेतु भारद्वाज - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी मे मानव प्रतिमा - पृ. 223-224